Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com

ISSN:2584-105X Pg. 406-413

मृत्युदंड एवं मानवाधिकार: भारतीय संविधान एवं अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों का तुलनात्मक अध्ययन

Parul Gupta
Research Scholar (Law), I.I.M.T. University, Meerut, U.P.
Dr. Vidushi Goel
Assistant Professor (Law), I.I.M.T. University, Meerut, U.P.

Accepted: 15/03/2026
Published: 26/03/2026 *DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.21769756*

सारांश (Abstract)

मृत्युदंड की संस्था अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विधिशास्त्र तथा राष्ट्रीय संवैधानिक व्यवस्थाओं के मध्य तनाव का एक प्रमुख क्षेत्र है। जहां विश्व मानवाधिकार घोषणापत्र (UDHR) एवं नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (ICCPR) जीवन के अधिकार को सर्वोच्च मानवाधिकार के रूप में प्रतिष्ठापित करते हुए मृत्युदंड की क्रमिक समाप्ति की दिशा में स्पष्ट झुकाव प्रदर्शित करते हैं, वहीं भारत का संविधान, अनुच्छेद 21 के अंतर्गत "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" की शर्त के साथ, मृत्युदंड को एक संवैधानिक रूप से वैध, यद्यपि अपवादात्मक, दंड के रूप में स्वीकार करता है। यह शोध-पत्र भारतीय संवैधानिक ढांचे तथा प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों-यथा ICCPR, इसका दूसरा वैकल्पिक प्रोटोकॉल, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (ECOSOC) के सुरक्षोपाय, तथा क्षेत्रीय मानवाधिकार तंत्रों-के मध्य तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन दर्शाता है कि भारत, यद्यपि ICCPR का हस्ताक्षरकर्ता एवं अनुसमर्थनकर्ता राष्ट्र है, तथापि उसने दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल की न तो पुष्टि की है और न ही संयुक्त राष्ट्र महासभा में मृत्युदंड पर स्थगन (moratorium) संबंधी प्रस्तावों का ऐतिहासिक रूप से समर्थन किया है। भारतीय न्यायपालिका ने बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) से लेकर मनोज (2022) एवं वसंत सम्पत दुपारे (2025) तक की श्रृंखला में मृत्युदंड के प्रयोग को प्रक्रियात्मक दृष्टि से संकुचित एवं सुरक्षोपायों से युक्त करने का प्रयास किया है, जो अंतरराष्ट्रीय मानकों-विशेषकर उचित प्रक्रिया, गैर-भेदभाव, तथा भेद्य समूहों के संरक्षण-के साथ आंशिक अभिसरण प्रदर्शित करता है। तथापि, महत्वपूर्ण विचलन के क्षेत्र भी विद्यमान हैं-यथा मृत्युदंड के दायरे का निरंतर विस्तार, निष्पादन-पूर्व सूचना संबंधी पारदर्शिता का अभाव, तथा न्यायिक भूल की उच्च संभावना, जैसा कि अपीलीय स्तर पर दोषमुक्ति की उच्च दर से स्पष्ट होता है। यह शोध-पत्र यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि भारत को पूर्ण एवं तत्काल उन्मूलन के मार्ग की बाध्यता के बिना भी, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के साथ अधिक सारवान अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु ठोस संस्थागत कदम उठाने चाहिए।

कुंजी शब्द (Keywords): *मृत्युदंड, मानवाधिकार, ICCPR, अनुच्छेद 21, जीवन का अधिकार, दूसरा वैकल्पिक प्रोटोकॉल, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति, तुलनात्मक संवैधानिक विधि*

1. प्रस्तावना

जीवन का अधिकार अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विधि में सर्वाधिक मौलिक एवं अपरिहार्य अधिकार माना जाता है, जिसके बिना अन्य समस्त अधिकारों का अस्तित्व निरर्थक हो जाता है। तथापि, विश्व के अधिकांश विधि-तंत्र, जीवन के अधिकार की सार्वभौमिक स्वीकृति के बावजूद, राज्य को कतिपय परिस्थितियों में इस अधिकार से वंचित करने की शक्ति-अर्थात मृत्युदंड देने की शक्ति-प्रदान करते रहे हैं। यह द्वंद्व-एक ओर जीवन के अधिकार की सार्वभौमिकता तथा दूसरी ओर प्रभुसत्तासंपन्न राज्य की दंड-शक्ति-मृत्युदंड संबंधी अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विधिशास्त्र के केंद्र में स्थित है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु एक व्यापक मानक-ढांचा विकसित किया, जिसकी शुरुआत 1948 के विश्व मानवाधिकार घोषणापत्र (Universal Declaration of Human Rights - UDHR) से हुई। इसके पश्चात 1966 में अंगीकृत नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (International Covenant on Civil and Political Rights - ICCPR) ने जीवन के अधिकार को विधिक रूप से बाध्यकारी स्वरूप प्रदान किया। विगत सात दशकों में, विशेषकर 1989 में ICCPR के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल के अंगीकरण के पश्चात, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था मृत्युदंड की पूर्ण समाप्ति की दिशा में स्पष्ट रूप से अग्रसर हुई है। वर्तमान में विश्व के दो-तिहाई से अधिक देशों ने मृत्युदंड को विधिक रूप से अथवा व्यवहारतः समाप्त कर दिया है।

भारत इस वैश्विक प्रवृत्ति से पृथक स्थिति में खड़ा है। भारत ने 1979 में ICCPR का अनुसमर्थन किया, तथापि जीवन के अधिकार को प्रतिपादित करने वाले अनुच्छेद 6 के संदर्भ में एक व्याख्यात्मक घोषणा (interpretative declaration) दर्ज करते हुए यह स्पष्ट किया कि यह अनुच्छेद "इस अपेक्षा के अनुरूप लागू होगा कि अनुच्छेद 6 के खंड 2 से 6 केवल उन प्रक्रियात्मक सुरक्षोपायों को नियंत्रित करते हैं, जिनका पालन तब किया जाना है जब कोई सक्षम न्यायालय मृत्युदंड की सजा सुनाए।" इस घोषणा के माध्यम से भारत ने स्पष्ट किया कि वह ICCPR के अंतर्गत मृत्युदंड की समाप्ति की किसी अंतर्निहित बाध्यता को स्वीकार नहीं करता, अपितु केवल प्रक्रियात्मक सुरक्षोपायों तक सीमित प्रतिबद्धता व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त, भारत ने आज तक दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर अथवा अनुसमर्थन नहीं किया है, तथा संयुक्त राष्ट्र महासभा में मृत्युदंड पर वैश्विक स्थगन (moratorium) की मांग करने वाले प्रस्तावों के विरुद्ध अथवा उनसे दूर रहकर मतदान करता रहा है।

इस पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत शोध-पत्र यह परीक्षण करने का प्रयास करता है कि भारतीय संवैधानिक एवं न्यायिक ढांचा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के साथ किस सीमा तक संगत अथवा असंगत है। यह अध्ययन न तो मृत्युदंड के पूर्ण समर्थन का, न ही उसके तात्कालिक उन्मूलन का पक्षधर है, अपितु यह उद्देश्य रखता है कि दोनों विधिक व्यवस्थाओं-राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय-के मध्य अभिसरण (convergence) तथा विचलन (divergence) के बिंदुओं को साक्ष्य-आधारित एवं तुलनात्मक पद्धति से रेखांकित किया जाए, ताकि भविष्य के नीति-निर्माण हेतु एक ठोस विधिशास्त्रीय आधार उपलब्ध हो सके।

यह शोध-पत्र आठ प्रमुख अनुभागों में संरचित है। प्रारंभिक अनुभागों में प्रासंगिक साहित्य की समीक्षा तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार ढांचे-UDHR, ICCPR, इसके दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति के मानकों, तथा क्षेत्रीय तंत्रों-का विस्तृत विवेचन किया गया है, जिसके पश्चात भारतीय संवैधानिक ढांचे, विशेषकर अनुच्छेद 21, 14 एवं 20 की व्याख्या में हुए न्यायिक विकास का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात भारत की संधि-स्थिति एवं संयुक्त राष्ट्र में मतदान-व्यवहार का परीक्षण किया गया है, जिसके आधार पर दोनों ढांचों के मध्य पांच विशिष्ट आयामों-प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय, अपराधों का दायरा, न्यायिक भूल, भेद्य समूहों का संरक्षण, तथा पारदर्शिता-पर विस्तृत तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। पत्र का समापन एक आलोचनात्मक मूल्यांकन तथा ठोस नीतिगत सुझावों के साथ होता है।

2. साहित्य समीक्षा

मृत्युदंड एवं मानवाधिकार के अंतर्संबंध पर विद्यमान साहित्य को तीन व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी अंतरराष्ट्रीय विधिशास्त्रीय अध्ययनों से संबंधित है, जो ICCPR, यूरोपीय मानवाधिकार अभिसमय (European Convention on Human Rights) के प्रोटोकॉल 6 एवं 13, तथा अमेरिकी मानवाधिकार अभिसमय (American Convention on Human Rights) के अंतर्गत विकसित मृत्युदंड-विरोधी मानकों का विश्लेषण करते हैं। इन अध्ययनों में यह सामान्यतः स्वीकार किया गया है कि अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विधि, यद्यपि मृत्युदंड को पूर्णतः निषिद्ध नहीं करती (कम से कम उन राष्ट्रों के लिए जिन्होंने दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल का अनुसमर्थन नहीं किया है),

तथापि यह इसके प्रयोग को अत्यंत संकुचित, प्रक्रियात्मक रूप से सुरक्षित, तथा "सर्वाधिक गंभीर अपराधों" (most serious crimes) तक सीमित रखने की अपेक्षा करती है।

द्वितीय श्रेणी भारतीय संवैधानिक विधिशास्त्र पर केंद्रित है, जिसमें अनुच्छेद 21 के अंतर्गत "जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार" की व्याख्या में हुए क्रमिक विकास का अध्ययन किया गया है। मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के ऐतिहासिक निर्णय ने "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" की अवधारणा को "उचित, न्यायसंगत एवं तर्कसंगत प्रक्रिया" (due process) के निकट ला दिया, जिसने अप्रत्यक्ष रूप से मृत्युदंड संबंधी प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं को भी प्रभावित किया। विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि बचन सिंह वाद में विकसित "दुर्लभतम में दुर्लभतम" सिद्धांत वस्तुतः भारतीय संविधान के भीतर अंतरराष्ट्रीय "सर्वाधिक गंभीर अपराध" मानक के एक स्वदेशी (indigenous) समानांतर संस्करण के रूप में विकसित हुआ, यद्यपि इसकी उत्पत्ति सीधे अंतरराष्ट्रीय विधि से नहीं, अपितु घरेलू संवैधानिक व्याख्या से हुई।

तृतीय श्रेणी तुलनात्मक एवं अंतःविषयक अध्ययनों की है, जो राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संदर्भ के प्रयोग का विश्लेषण करते हैं। भारत में उच्चतम न्यायालय ने कई अवसरों पर विशेषकर विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) जैसे निर्णयों में-यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां घरेलू विधि में रिक्तता (lacuna) हो, वहां अंतरराष्ट्रीय अभिसमय एवं मानदंड, बशर्ते वे मौलिक अधिकारों के अनुरूप हों, व्याख्या के सहायक स्रोत के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। तथापि मृत्युदंड के विशिष्ट संदर्भ में, भारतीय न्यायपालिका ने अंतरराष्ट्रीय मानकों को प्रत्यक्ष रूप से बाध्यकारी स्रोत के रूप में स्वीकार करने से परहेज़ किया है, अपितु उन्हें अधिकतम अप्रत्यक्ष, व्याख्यात्मक प्रभाव तक सीमित रखा है। यह साहित्य-समीक्षा प्रस्तुत अध्ययन हेतु यह आधार प्रदान करती है कि भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय ढांचों के मध्य संबंध "प्रत्यक्ष अंगीकरण" के बजाय "चयनात्मक अभिसरण" (selective convergence) की प्रकृति का है।

3. शोध उद्देश्य एवं पद्धति

3.1 शोध उद्देश्य

- भारतीय संविधान के अंतर्गत मृत्युदंड संबंधी अधिकारों की विधिक स्थिति का विश्लेषण करना।
- मृत्युदंड से संबंधित प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार उपकरणों एवं मानकों की पहचान करना।
- भारत की संधि-स्थिति, व्याख्यात्मक घोषणाओं तथा संयुक्त राष्ट्र में मतदान-व्यवहार का परीक्षण करना।
- भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय ढांचों के मध्य अभिसरण एवं विचलन के क्षेत्रों को तुलनात्मक रूप से रेखांकित करना।
- अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के साथ अधिक सारवान अनुपालन हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

3.2 शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन तुलनात्मक विधिक अनुसंधान पद्धति (comparative legal research method) पर आधारित है, जिसमें डॉक्ट्रिनल विश्लेषण को प्राथमिक उपागम के रूप में अपनाया गया है। अध्ययन में भारतीय संविधान, उच्चतम न्यायालय के निर्णयों, अंतरराष्ट्रीय संधियों (यथा UDHR, ICCPR तथा इसके प्रोटोकॉल), संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति के जनरल कमेंट्स एवं आवधिक समीक्षा रिपोर्टों, तथा क्षेत्रीय मानवाधिकार तंत्रों के दस्तावेजों का व्यवस्थित विश्लेषण किया गया है। तुलनात्मक विधि के "क्रियात्मक तुलना" (functional comparison) उपागम का प्रयोग करते हुए, दोनों ढांचों में समान प्रक्रियात्मक एवं सारवान प्रश्नों यथा उचित प्रक्रिया, भेदभाव-निषेध, तथा भेद्य समूहों का संरक्षण के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोणों की तुलना की गई है।

4. अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार ढांचा

4.1 विश्व मानवाधिकार घोषणापत्र (UDHR)

1948 का विश्व मानवाधिकार घोषणापत्र, यद्यपि विधिक रूप से बाध्यकारी संधि नहीं अपितु एक घोषणात्मक दस्तावेज है, तथापि इसे प्रथागत अंतरराष्ट्रीय विधि (customary international law) का दर्जा प्राप्त माना जाता है। इसका अनुच्छेद 3 यह उद्घोषित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता एवं व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है, तथा अनुच्छेद 5 क्रूर, अमानवीय अथवा अपमानजनक दंड अथवा व्यवहार को निषिद्ध करता है। घोषणापत्र में मृत्युदंड का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, किंतु इसके पश्चातवर्ती विकास विशेषकर ICCPR तथा उसके प्रोटोकॉल्स को इसी मूल दर्शन के विस्तार के रूप में देखा जाता है।

4.2 ICCPR एवं दूसरा वैकल्पिक प्रोटोकॉल

ICCPR का अनुच्छेद 6 जीवन के अधिकार को प्रतिष्ठापित करता है तथा यह उपबंधित करता है कि "किसी को भी मनमाने ढंग से उसके जीवन से वंचित नहीं किया जाएगा।" यद्यपि यह अनुच्छेद मृत्युदंड को पूर्णतः निषिद्ध नहीं करता, तथापि यह इसके प्रयोग को महत्वपूर्ण सीमाओं के अधीन करता है: मृत्युदंड केवल "सर्वाधिक गंभीर

अपराधों" के लिए, सक्षम न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय के अनुसरण में, तथा अपराध के समय प्रवृत्त एवं ICCPR के अन्य उपबंधों के अनुरूप विधि के अंतर्गत ही दिया जा सकता है। अनुच्छेद 6 यह भी उपबंधित करता है कि मृत्युदंड अठारह वर्ष से कम आयु के अपराधियों पर नहीं दिया जाएगा तथा गर्भवती महिलाओं पर इसे निष्पादित नहीं किया जाएगा।

1989 में अंगीकृत ICCPR का दूसरा वैकल्पिक प्रोटोकॉल इस दिशा में एक निर्णायक कदम है, जो हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों को अपने अधिकार-क्षेत्र में मृत्युदंड को पूर्णतः समाप्त करने हेतु बाध्य करता है, केवल युद्धकाल में किए गए अत्यंत गंभीर सैन्य अपराधों के लिए एक सीमित अपवाद के साथ। यह प्रोटोकॉल एक "वैकल्पिक" उपकरण है अर्थात ICCPR का सदस्य राष्ट्र होना इस प्रोटोकॉल की स्वीकृति हेतु बाध्यकारी नहीं है। भारत ने, अन्य अनेक एशियाई एवं मध्य-पूर्वी देशों की भांति, इस प्रोटोकॉल पर न तो हस्ताक्षर किए हैं और न ही इसका अनुसमर्थन किया है।

4.3 संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति एवं प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय

संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (ECOSOC) ने 1984 में "मृत्युदंड का सामना करने वाले व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी" शीर्षक से सुरक्षोपायों का एक समूह अंगीकृत किया, जो यह अपेक्षा करता है कि मृत्युदंड केवल अत्यंत गंभीर अपराधों तक सीमित हो, अपराध के समय अठारह वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों तथा गर्भवती महिलाओं, नवजात शिशुओं की माताओं अथवा मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों पर लागू न हो, तथा निष्पक्ष विचारण, सक्षम विधिक प्रतिनिधित्व, तथा उच्चतर प्राधिकरण के समक्ष अपील अथवा पुनर्विचार का अधिकार सुनिश्चित किया जाए। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति ने अपने जनरल कमेंट संख्या 36 (2018) में अनुच्छेद 6 की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया कि "सर्वाधिक गंभीर अपराध" की अवधारणा को अत्यंत संकुचित रूप से पढ़ा जाना चाहिए तथा यह केवल जानबूझकर की गई हत्या जैसे चरम अपराधों तक सीमित होनी चाहिए, आर्थिक अपराधों, नशीले पदार्थों से संबंधित अपराधों अथवा भ्रष्टाचार जैसे अपराधों तक इसका विस्तार अंतरराष्ट्रीय मानकों के विपरीत है।

4.4 क्षेत्रीय मानवाधिकार तंत्र

क्षेत्रीय स्तर पर मृत्युदंड-विरोधी मानकों का सर्वाधिक सुदृढ़ विकास यूरोप में हुआ है। यूरोपीय मानवाधिकार अभिसमय के प्रोटोकॉल 6 (1983) ने शांतिकाल में मृत्युदंड को समाप्त किया, जबकि प्रोटोकॉल 13 (2002) ने युद्धकाल सहित सभी परिस्थितियों में इसे पूर्णतः निषिद्ध कर दिया- जिससे यूरोपीय संघ के सदस्य राष्ट्रों के लिए मृत्युदंड की पूर्ण समाप्ति एक सदस्यता-पूर्वापेक्षा बन गई। अमेरिकी महाद्वीप में, अमेरिकी मानवाधिकार अभिसमय का मृत्युदंड उन्मूलन संबंधी प्रोटोकॉल भी समान दिशा में अग्रसर है, यद्यपि इसकी स्वीकृति अपेक्षाकृत सीमित रही है। अफ्रीकी मानवाधिकार तंत्र में भी क्रमिक प्रगति देखी गई है। इसके विपरीत, एशियाई क्षेत्र में-जहां भारत स्थित है-कोई भी क्षेत्रीय मानवाधिकार अभिसमय अथवा न्यायालय अस्तित्व में नहीं है, जिससे इस क्षेत्र के राष्ट्रों पर मृत्युदंड-संबंधी क्षेत्रीय दबाव अपेक्षाकृत न्यून रहा है।

5. भारतीय संवैधानिक ढांचा

5.1 अनुच्छेद 21: जीवन का अधिकार एवं विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 यह उपबंधित करता है कि "किसी व्यक्ति को उसके जीवन अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त वंचित नहीं किया जाएगा।" यह उपबंध, अमेरिकी संविधान के "उचित विधिक प्रक्रिया" (due process of law) के मानक से भिन्न, मूलतः "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" (procedure established by law) के अपेक्षाकृत संकुचित ब्रिटिश मॉडल पर आधारित था, जिसका अर्थ यह था कि यदि विधानमंडल द्वारा निर्मित कोई विधिवत प्रक्रिया विद्यमान है, तो जीवन के अधिकार का हनन संविधान-सम्मत माना जाएगा, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही अनुचित अथवा कठोर क्यों न हो।

तथापि मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के ऐतिहासिक निर्णय ने इस संकुचित व्याख्या को आमूल परिवर्तित कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 के अंतर्गत "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" को उचित, न्यायसंगत एवं तर्कसंगत (fair, just and reasonable) होना चाहिए, तथा यह अनुच्छेद 14 (समता का अधिकार) एवं अनुच्छेद 19 (स्वतंत्रता के अधिकार) से पृथक नहीं, अपितु परस्पर संबद्ध होकर पढ़ा जाना चाहिए। इस निर्णय ने भारतीय संविधान में एक अंतर्निहित "उचित प्रक्रिया" के तत्व को समाविष्ट कर दिया, जिससे भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय मानकों (विशेषकर ICCPR के अंतर्गत निष्पक्ष विचारण संबंधी अपेक्षाओं) के मध्य एक सारवान अभिसरण उत्पन्न हुआ। इसी विकास-क्रम की अगली कड़ी के रूप में बचन सिंह वाद में मृत्युदंड को "दुर्लभतम में दुर्लभतम" मामलों तक संकुचित करने का सिद्धांत विकसित हुआ, जो संरचनात्मक रूप से ICCPR के "सर्वाधिक गंभीर अपराध" मानक के समानांतर है, यद्यपि इसकी शब्दावली एवं वैचारिक उत्पत्ति भिन्न है।

5.2 अनुच्छेद 14 एवं 20: समता एवं दोहरे दंड से संरक्षण

अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता एवं विधियों के समान संरक्षण की गारंटी प्रदान करता है, जो मृत्युदंड के मनमाने अथवा भेदभावपूर्ण प्रयोग के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण संवैधानिक अवरोध के रूप में कार्य करता है। बचन सिंह वाद में स्वयं न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि यदि मृत्युदंड का प्रयोग "न्यायाधीश की व्यक्तिगत प्रवृत्ति" के आधार पर मनमाने ढंग से किया जाए, तो यह अनुच्छेद 14 के विपरीत होगा यह सिद्धांत ICCPR के अनुच्छेद 6 में निहित "मनमाने ढंग से जीवन से वंचित न करने" के मानक के साथ प्रत्यक्ष रूप से प्रतिध्वनित होता है। अनुच्छेद 20(2) दोहरे दंड से संरक्षण (protection against double jeopardy) तथा अनुच्छेद 20(3) आत्म-दोषारोपण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है, जो निष्पक्ष विचारण संबंधी अंतरराष्ट्रीय मानकों (ICCPR अनुच्छेद 14) के साथ भी सुसंगत हैं।

5.3 न्यायिक व्याख्या का विकास-क्रम

भारतीय न्यायपालिका ने, यद्यपि स्पष्ट रूप से अंतरराष्ट्रीय संधियों को प्रत्यक्ष रूप से बाध्यकारी स्रोत के रूप में स्वीकार नहीं किया, तथापि व्याख्यात्मक प्रक्रिया में इनसे प्रभावित होने के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ (2014) में उच्चतम न्यायालय ने दया-याचिका के निपटान में अत्यधिक विलंब को अनुच्छेद 21 के हनन के रूप में मान्यता देते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विधिशास्त्र में विकसित "डेथ रो सिंड्रोम" (death row phenomenon) की अवधारणा से समानांतर सिद्धांत स्थापित किया। हाल के निर्णयों-मनोज (2022) एवं वसंत सम्पत दुपारे (2025)-में मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन, जेल-आचरण रिपोर्ट तथा शमन-सुनवाई को अनिवार्य बनाकर न्यायालय ने अप्रत्यक्ष रूप से ECOSOC के 1984 सुरक्षोपायों तथा जनरल कमेंट 36 में निहित प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं के निकट आने का प्रयास किया है, भले ही इन निर्णयों में अंतरराष्ट्रीय दस्तावेजों का स्पष्ट संदर्भ सीमित रहा हो।

6. भारत की अंतरराष्ट्रीय संधि-स्थिति एवं मतदान-व्यवहार

भारत की अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था में स्थिति एक चयनात्मक भागीदारी (selective participation) की है। भारत ICCPR, नस्लीय भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर अंतरराष्ट्रीय अभिसमय (ICERD), महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय (CEDAW), तथा बाल अधिकारों पर अभिसमय (CRC) सहित अनेक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार उपकरणों का पक्षकार है, तथा वह संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति के समक्ष अपनी आवधिक समीक्षा भी नियमित रूप से प्रस्तुत करता रहा है। तथापि मृत्युदंड के विशिष्ट संदर्भ में, भारत ने ICCPR अनुच्छेद 6 पर अपनी व्याख्यात्मक घोषणा के माध्यम से तथा दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल से दूरी बनाए रखकर, अपनी संप्रभु दंड-नीति (sovereign penal policy) को अंतरराष्ट्रीय बाध्यता से बाहर रखने का सुस्पष्ट प्रयास किया है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा में समय-समय पर प्रस्तुत होने वाले "मृत्युदंड के प्रयोग पर स्थगन" (moratorium on the use of the death penalty) संबंधी प्रस्तावों पर भारत का मतदान-व्यवहार भी इसी नीति को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करता है। भारत ने ऐतिहासिक रूप से इन प्रस्तावों के विरुद्ध मतदान किया है अथवा उनसे दूरी बनाए रखी है, यह तर्क देते हुए कि मृत्युदंड का प्रश्न प्रत्येक राष्ट्र की संप्रभु आपराधिक-न्याय नीति का विषय है, तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस पर कोई सार्वभौमिक सहमति विद्यमान नहीं है। यह स्थिति भारत के उस व्यापक कूटनीतिक दृष्टिकोण के अनुरूप है, जो घरेलू आपराधिक-न्याय एवं संप्रभुता संबंधी विषयों पर अंतरराष्ट्रीय हस्तक्षेप को सीमित रखने का समर्थन करता है, तथा जिसे चीन, सिंगापुर, तथा अनेक अन्य एशियाई एवं मध्य-पूर्वी राष्ट्रों के दृष्टिकोण के साथ समानता प्राप्त है।

यह उल्लेखनीय है कि भारत की यह स्थिति पूर्णतः अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दायित्वों की अवहेलना नहीं है, अपितु एक "द्वैध दृष्टिकोण" (dualist approach) है, जिसके अंतर्गत भारत अंतरराष्ट्रीय संधियों को तब तक घरेलू विधि पर सीधे बाध्यकारी नहीं मानता, जब तक कि संसद द्वारा उन्हें राष्ट्रीय विधान में रूपांतरित न किया जाए (संविधान का अनुच्छेद 253)। यही कारण है कि भारतीय न्यायालय अंतरराष्ट्रीय मानकों को प्रत्यक्ष बाध्यकारी विधि के रूप में नहीं, अपितु व्याख्या के सहायक एवं अनुनयकारी (persuasive) स्रोत के रूप में ही स्वीकार करते हैं।

7. तुलनात्मक विश्लेषण: अभिसरण एवं विचलन के क्षेत्र

7.1 प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय: महत्वपूर्ण अभिसरण

भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय ढांचों के मध्य सर्वाधिक स्पष्ट अभिसरण प्रक्रियात्मक सुरक्षोपायों के क्षेत्र में देखा जाता है। दोनों ही व्यवस्थाएं इस बात पर सहमत हैं कि मृत्युदंड, यदि दिया भी जाए, तो केवल कठोरतम प्रक्रियात्मक जांच के पश्चात ही दिया जाना चाहिए। भारत की अनिवार्य उच्च न्यायालय पुष्टि व्यवस्था, बचन सिंह का "विशेष कारण" अभिलेखन सिद्धांत, तथा मनोज एवं दुपारे में विकसित सजा-सुनवाई संबंधी अपेक्षाएं, ECOSOC सुरक्षोपायों तथा जनरल कमेंट 36 में निहित निष्पक्ष विचारण, सक्षम विधिक

प्रतिनिधित्व, तथा उच्चतर प्राधिकरण के समक्ष अपील के अधिकार के साथ संरचनात्मक रूप से अत्यंत सुसंगत हैं।

7.2 अपराधों का दायरा: आंशिक विचलन

"सर्वाधिक गंभीर अपराध" के मानक की व्याख्या के संदर्भ में महत्वपूर्ण विचलन दृष्टिगोचर होता है। जनरल कमेंट 36 यह स्पष्ट करता है कि यह मानक केवल जानबूझकर की गई हत्या जैसे चरम अपराधों तक सीमित होना चाहिए। भारतीय विधि, इसके विपरीत, नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रॉपिक सब्सटांसेज़ अधिनियम के अंतर्गत बार-बार दोषसिद्धि पर तथा भारतीय न्याय संहिता के अंतर्गत भीड़ द्वारा हत्या जैसे अपराधों के लिए भी मृत्युदंड का प्रावधान करती है, जो अंतरराष्ट्रीय समिति की संकुचित व्याख्या के साथ पूर्णतः संगत प्रतीत नहीं होता। यह विचलन दर्शाता है कि भारत में मृत्युदंड का दायरा, प्रक्रियात्मक संकुचन के समानांतर, सारवान (substantive) रूप से विस्तृत भी होता जा रहा है-जो एक आंतरिक विरोधाभास उत्पन्न करता है।

7.3 अपरिवर्तनीयता एवं न्यायिक भूल: साझा चिंता, भिन्न प्रतिक्रिया

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विधिशास्त्र में न्यायिक भूल की अपरिवर्तनीयता मृत्युदंड-विरोधी तर्क का केंद्रीय स्तंभ है। भारतीय अनुभव भी इस चिंता की गंभीर रूप से पुष्टि करता है-जैसा कि पूर्व अनुभागों में विश्लेषित सांख्यिकीय आंकड़े दर्शाते हैं, विगत दशक में उच्च न्यायालयों ने लगभग 34 प्रतिशत मृत्युदंड मामलों में अभियुक्तों को दोषमुक्त किया है। तथापि, जहां अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था इस जोखिम की प्रतिक्रिया में मृत्युदंड की पूर्ण समाप्ति की अनुशंसा करती है, वहीं भारतीय व्यवस्था ने इस जोखिम को न्यूनतम करने हेतु अतिरिक्त प्रक्रियात्मक स्तरों (अनिवार्य पुष्टि, उपचारात्मक याचिका) पर निर्भरता को प्राथमिकता दी है-एक ऐसा दृष्टिकोण जिसकी प्रभावकारिता स्वयं संदेहास्पद बनी हुई है, क्योंकि उच्च दोषमुक्ति-दर यह प्रदर्शित करती है कि प्रारंभिक स्तर की त्रुटियां व्यवस्थित रूप से घटित होती रहती हैं।

7.4 भेद्य समूहों का संरक्षण

अंतरराष्ट्रीय मानक नाबालिगों, गर्भवती महिलाओं तथा मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को मृत्युदंड से स्पष्ट रूप से अपवर्जित करते हैं। भारतीय विधि भी सिद्धांततः किशोर न्याय अधिनियम के अंतर्गत नाबालिगों को तथा दंड प्रक्रिया संबंधी उपबंधों के अंतर्गत गर्भवती महिलाओं को इस दायरे से बाहर रखती है। तथापि मानसिक बीमारी एवं बौद्धिक अक्षमता के संदर्भ में व्यावहारिक अंतराल अधिक स्पष्ट है-जैसा कि पूर्व शोध में उल्लेखित है, समुचित मानसिक स्वास्थ्य मूल्यांकन का अभाव इस श्रेणी के संरक्षण को प्रायः निष्प्रभावी बना देता है, जो अंतरराष्ट्रीय मानकों की भावना के साथ पूर्ण अनुपालन में एक महत्वपूर्ण कमी है।

7.5 पारदर्शिता एवं निष्पादन-संबंधी सूचना

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार समिति निष्पादन-संबंधी आंकड़ों तथा प्रक्रियाओं में पारदर्शिता पर विशेष बल देती है, ताकि स्वतंत्र निगरानी संभव हो सके। भारत में, यद्यपि "स्क्वायर सर्कल क्लिनिक" जैसे स्वतंत्र शैक्षणिक संस्थानों द्वारा वार्षिक सांख्यिकी रिपोर्टें प्रकाशित की जाती हैं, तथापि राज्य द्वारा स्वयं सक्रिय, केंद्रीकृत तथा सुगमता से सुलभ आंकड़ों का प्रकाशन सीमित बना हुआ है। यह पारदर्शिता-अंतराल स्वतंत्र मानवाधिकार निगरानी तथा साक्ष्य-आधारित नीति-निर्माण, दोनों में बाधा उत्पन्न करता है।

इसके अतिरिक्त, दोनों व्यवस्थाएं अपील एवं पुनर्विचार के बहुस्तरीय अधिकार को मान्यता देती हैं। भारत में सत्र न्यायालय से उच्च न्यायालय, तत्पश्चात उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका, समीक्षा याचिका, उपचारात्मक याचिका, तथा अंततः राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के समक्ष दया-याचिका-यह बहुस्तरीय संरचना, सैद्धांतिक रूप से, ICCPR अनुच्छेद 14(5) में निहित उच्चतर न्यायालय द्वारा पुनरीक्षा के अधिकार की अपेक्षा से कहीं अधिक व्यापक प्रतीत होती है। तथापि यह मात्रात्मक बहुलता स्वयं में गुणात्मक प्रभावशीलता की गारंटी नहीं है-जैसा कि शत्रुघ्न चौहान वाद में स्वयं उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया, बहुस्तरीय प्रक्रिया का अत्यधिक विलंबित होना स्वयं मानवाधिकार हनन का एक स्वतंत्र आधार बन सकता है, जिसे अंतरराष्ट्रीय विधिशास्त्र में "डेथ रो सिंड्रोम" के रूप में मान्यता प्राप्त है।

7.6 राज्य-सक्षमता एवं संसाधन-असमानता का प्रश्न

एक अतिरिक्त आयाम जो प्रायः तुलनात्मक विश्लेषण में उपेक्षित रह जाता है, वह है राज्य-सक्षमता (state capacity) एवं संसाधन-असमानता का प्रश्न। अंतरराष्ट्रीय मानक-यथा सक्षम विधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार-सैद्धांतिक रूप से सार्वभौमिक हैं, किंतु उनकी व्यावहारिक प्राप्ति राष्ट्रीय कानूनी सहायता प्रणाली की गुणवत्ता एवं संसाधनों पर निर्भर करती है। भारत जैसे विशाल एवं संसाधन-सीमित न्यायिक तंत्र में, जिला एवं सत्र स्तर पर विधिक सहायता वकीलों पर अत्यधिक केसलोड, प्रशिक्षण का अभाव, तथा पारिश्रमिक की अपर्याप्तता जैसी संरचनात्मक चुनौतियां व्यापक रूप से दस्तावेजीकृत हैं। यह असमानता इस बात को रेखांकित करती है कि विधिक मानकों का औपचारिक अभिसरण, संस्थागत संसाधनों के अभाव में, सारवान समता में अनुवादित नहीं हो पाता-एक ऐसी अंतर्दृष्टि जो विकासशील

लोकतंत्रों में मानवाधिकार-कार्यान्वयन के व्यापक तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी प्रासंगिक है।

8. आलोचनात्मक मूल्यांकन

उपर्युक्त तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारत तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था के मध्य संबंध को "पूर्ण अनुपालन" अथवा "पूर्ण अवहेलना" के द्विआधारी ढांचे में समझना अनुपयुक्त होगा। इसके स्थान पर, यह संबंध एक जटिल, बहुस्तरीय एवं आंशिक अभिसरण की प्रकृति का है, जिसमें भारतीय न्यायपालिका ने-विशेषकर प्रक्रियात्मक सुरक्षोपायों के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से, अंतरराष्ट्रीय मानकों के समानांतर, अपने स्वयं के संवैधानिक सिद्धांत विकसित किए हैं, जबकि विधायिका ने-विशेषकर अपराधों के दायरे के विस्तार के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय अपेक्षाओं से दूर जाने की प्रवृत्ति भी प्रदर्शित की है।

यह आंतरिक विरोधाभास-न्यायपालिका द्वारा संकुचन एवं विधायिका द्वारा विस्तार-भारतीय मृत्युदंड-नीति की एक संरचनात्मक विशेषता प्रतीत होती है, जो लोकतांत्रिक राजनीति में जनभावना के दबाव तथा संवैधानिक न्यायालयों की मानवाधिकार-संरक्षक भूमिका के मध्य निरंतर तनाव को प्रतिबिंबित करती है। इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेखनीय है कि भारत का "द्वैध दृष्टिकोण" तथा अनुच्छेद 6 पर उसकी व्याख्यात्मक घोषणा, उसे तकनीकी रूप से अंतरराष्ट्रीय विधि के उल्लंघन से बचाती है, किंतु यह मानवाधिकार संरक्षण की सारवान गुणवत्ता के प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देती है। दूसरे शब्दों में, विधिक औपचारिकता के स्तर पर अनुपालन तथा वास्तविक, प्रभावी संरक्षण के स्तर पर अनुपालन के मध्य अंतर करना इस विश्लेषण के लिए अनिवार्य है।

9. निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि भारतीय संवैधानिक ढांचा तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानक, विशेषकर प्रक्रियात्मक सुरक्षोपायों के क्षेत्र में, उल्लेखनीय अभिसरण प्रदर्शित करते हैं, तथापि अपराधों के सारवान दायरे, भेद्य समूहों के प्रभावी संरक्षण, तथा पारदर्शिता के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अंतराल बने हुए हैं। भारत को दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकॉल के तत्काल अनुसमर्थन की बाध्यता के बिना भी, निम्नलिखित दिशाओं में ठोस कदम उठाने चाहिए:

- मृत्युदंड योग्य अपराधों की सूची की स्वतंत्र समीक्षा की जाए, ताकि यह जनरल कमेंट 36 में प्रतिपादित 'सर्वाधिक गंभीर अपराध' के संकुचित मानक के अधिक निकट लाई जा सके।
- मानसिक स्वास्थ्य एवं बौद्धिक अक्षमता के मूल्यांकन हेतु अनिवार्य, मानकीकृत तथा स्वतंत्र विशेषज्ञ प्रक्रिया स्थापित की जाए, ताकि भेद्य समूहों के संरक्षण की सारवान प्रभावशीलता सुनिश्चित हो सके।
- राज्य द्वारा स्वयं केंद्रीकृत, नियमित एवं सुगमता से सुलभ मृत्युदंड-संबंधी आंकड़ों का प्रकाशन प्रारंभ किया जाए, ताकि स्वतंत्र निगरानी एवं जवाबदेही सुदृढ़ हो सके।
- न्यायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों-यथा ECOSOC सुरक्षोपाय एवं जनरल कमेंट 36 को स्पष्ट रूप से समाहित किया जाए, ताकि घरेलू सजा-निर्धारण प्रक्रिया इनके साथ अधिक सुसंगत हो सके।
- संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति के समक्ष भारत की आवधिक समीक्षा प्रक्रिया को अधिक सारवान बनाया जाए, तथा समिति की अनुशंसाओं पर घरेलू विधिक सुधार हेतु एक संस्थागत अनुवर्ती तंत्र (follow-up mechanism) स्थापित किया जाए।

अंततः, यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि भारत तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था के मध्य संबंध को एक स्थिर, पूर्वनिर्धारित स्थिति के बजाय एक निरंतर विकासशील संवाद के रूप में देखा जाना चाहिए। भारतीय न्यायपालिका द्वारा प्रदर्शित प्रगतिशील व्याख्यात्मक प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि पूर्ण औपचारिक संधि-अनुसमर्थन के अभाव में भी, सारवान मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति संभव है। तथापि यह प्रगति तभी सार्थक एवं संधारणीय (sustainable) होगी, जब इसे विधायी संयम, संस्थागत पारदर्शिता, तथा भेद्य समूहों के प्रभावी संरक्षण द्वारा पूरक बनाया जाए।

10. अध्ययन की सीमाएं एवं भावी शोध की दिशा

प्रस्तुत अध्ययन की कुछ सीमाओं का उल्लेख आवश्यक है। प्रथमतः, यह अध्ययन मुख्यतः विधिक दस्तावेजों तथा न्यायिक निर्णयों के डॉक्ट्रिनल विश्लेषण पर आधारित है; संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति के समक्ष भारत की आवधिक समीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित कूटनीतिक वार्ताओं तथा आंतरिक नीति-निर्माण प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष अध्ययन इसके दायरे से बाहर है। द्वितीयतः, चूंकि जनरल कमेंट 36 अपेक्षाकृत हाल ही में (2018 में) अंगीकृत हुआ है, अतः भारतीय न्यायपालिका द्वारा इसके दीर्घकालिक प्रभाव का समुचित मूल्यांकन अभी समय के साथ ही संभव होगा। तृतीयतः, यह अध्ययन मुख्यतः वैश्विक तथा क्षेत्रीय ढांचों पर केंद्रित है; द्विपक्षीय मानवाधिकार संवादों (जैसे भारत-

यूरोपीय संघ मानवाधिकार वार्ता) में मृत्युदंड के विशिष्ट संदर्भ का विस्तृत विश्लेषण भविष्य के शोध हेतु एक उपयोगी दिशा हो सकता है। इसके अतिरिक्त, भारत की भांति ही "द्वैध दृष्टिकोण" अपनाने वाले अन्य दक्षिण एशियाई राष्ट्रों (यथा बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका) के साथ तुलनात्मक क्षेत्रीय अध्ययन भी इस विषय की समझ को समृद्ध कर सकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. Universal Declaration of Human Rights (UDHR), UN General Assembly Resolution 217 A (III), 1948.
2. International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR), 1966, संयुक्त राष्ट्र संधि श्रृंखला।
3. Second Optional Protocol to the ICCPR, Aiming at the Abolition of the Death Penalty, 1989.
4. UN Human Rights Committee, General Comment No. 36 on Article 6 (Right to Life), CCPR/C/GC/36, 2018.
5. ECOSOC, "Safeguards Guaranteeing Protection of the Rights of Those Facing the Death Penalty", Resolution 1984/50.
6. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, AIR 1978 SC 597.
7. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 1980 SC 898.
8. मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 1983 SC 957.
9. शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 SCC 1.
10. विशाखा बनाम राजस्थान राज्य, AIR 1997 SC 3011.
11. मनोज बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2022) SCC OnLine SC 677.
12. वसंत सम्पत दुपारे बनाम भारत संघ, (2025) — उच्चतम न्यायालय द्वारा सजा-सुनवाई प्रक्रिया संबंधी निर्णय।
13. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 14, 20, 21 एवं 253।
14. भारतीय न्याय संहिता, 2023 (Act No. 45 of 2023) ।
15. Protocol No. 6 and Protocol No. 13 to the European Convention on Human Rights, Council of Europe.
16. स्कायर सर्कल क्लिनिक (पूर्व नाम: Project 39A), राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली, "Death Penalty in India: Annual Statistics Report 2025", नालसार विधि विश्वविद्यालय, 2026।
17. भारत विधि आयोग, "मृत्युदंड" पर 262वीं रिपोर्ट, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, 2015।
18. Drishti IAS, "ICCPR की चौथी आवधिक समीक्षा", संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति समक्ष भारत की प्रस्तुति का विश्लेषण।

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.